Research Papers

डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/20
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 27, पृष्ठ सं. 100
प्रकाशन दिनांक : 20 से 25 प्रतिमाह
आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167
मूल्य 25/-
38 वाँ वर्ष
अक्षरा
184
जुलाई 2020
साहित्य की मासिकी

कोरोना संकट की आड़ में साभ्यतिक बदलाव की आहट

- अम्बिकादत्त शर्मा

जन्म - 1 जनवरी 1960।
जन्म स्थान - चतरा अंचल, (झारखंड)
शिक्षा - एम.ए. एवं पी-एच.डी.।
सम्मान - आप महामहोपाध्याय रिसर्च अवार्डतथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मध्यप्रदेश द्वारा नरेश मेहता स्मृति वाङ्मय सम्मान से सम्मानित हैं।

आज समूची दुनिया कोविड-19 नामक महामारी की चपेट में है। महामारियाँ तो पहले भी आती रही हैं और मनुष्य अपना बचाव करने में सफल भी होता रहा है। आशा है, इस बार भी कोरोना हारेगा और मनुष्य की जीत होगी। परन्तु हारा हुआ कोरोना इस बार जाते-जाते इतना तो जरूर कहता जायेगा कि मैं आधुनिक सभ्यता का वायरस हूँ और मेरे फलने-फैलने की बेशुमार सुचालकता उसकी रगों में है। अब यह मानव-जाति के विवेक पर निर्भर करता है कि वह आधुनिक सभ्यता के व्यामोह से निजात पाने का विकल्प ढूँढ़ेगा या फिर उसी के एक आभासी आयाम (वर्चुअल डायमेन्शन) को विकसित कर लेगा जो मेरी संक्रामक शक्ति की पकड़ से बाहर हो।

कोरोना वायरस की यह चेतावनी काल्पनिक ही सही लेकिन जायज है, क्योंकि इससे फैली यह महामारी वैसी नहीं जैसी कि पहले की महामारियाँ होती थीं। यह कई मायने में बिलकुल अलग प्रकार की है। इससे पहले की महामारियों को निरपवाद रूप से प्राकृतिक अशुभ (नेचुरल इविल) माना जाता था, लेकिन इसके पीछे ऐसी आशंका जतायी जा रही है कि यह नैतिक अशुभ (मोरल इविल) है। सम्भव है कि यह किसी दुष्ट मानवीय चेष्टा की सोची-समझी कारगुजारी हो। पहले की महामारियाँ तीव्र गति से मनुष्य को मृत्यु के कराल गाल में झोंक देती थीं और उनके फैलने की गति धीमी होती थी। परन्तु कोरोना वायरस मनुष्य को धीरे-धीरे मारता है और इसके फैलने की रफ्तार बहुत तेज है। जबकि यह वायुमण्डल पर सवार होकर बहुत दूर की यात्रा करने में सक्षम नहीं। पहले की महामारियाँ अक्सर गन्दी बस्तियों से फैलती थीं, क्योंकि गाँव-देहात का जीवन हाइजनिक नहीं हुआ करता था, परन्तु कोविड-19 महानगरों से फैली महामारी है।

मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर इसकी प्रभावमत्ता इतनी अधिक है कि विश्व इतिहास में सम्भवतः यह पहली घटना हो जिसका संज्ञान पूरी दुनिया भर में एक साथ लिया गया है। किसी घटना का वैश्वीय स्तर पर संज्ञान में लिया जाना एक प्रकार की वैश्वीय एकजुटता को प्रदर्शित करने वाली पहल होती है। परन्तु यह कैसी विडम्बना है कि वैश्वीय एकजुटता की इस संज्ञानात्मकता में अन्दर ही अन्दर प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य से अलग-थलग रहने के लिए विवश कर दिया गया है। हर एक आदमी

वर्ष – 7 फरवरी, 2020 बसंत पञ्चमी, सं. 2076 वि. ISSN 2349-1426

तत्त्व-सिन्धु

कुमारस्वामी फाउण्डेशन
लखनऊ

रामायण का सत्य और महाभारत का धर्म

अम्बिकादत्त शर्मा

कोई भी महाकाव्य किसी संस्कृति और सभ्यता का एक वाङ्मय-विग्रह होता है। इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत बड़े फलक पर जीवनानुभव का अवलोकन और अवगाहन करने में निहित है। यह अवगाहन वाह्य-दर्शक की भूमिका में न किया जाकर अंतरंग चित्तभूमि पर किया जाता है। इसी के चलते महाकाव्यों में इतिहास को सन्दर्भित करने वाले एक कथानक के माध्यम से सांस्कृतिक जीवन के अन्तर्विरोधों, अन्तर्द्वन्द्वों, जटिलताओं और इतिहास की प्रयोजनमूलकता का आदर्शोन्मुख समाधान उस संस्कृति की विश्वदृष्टि के सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव हो पाता है। अतः महाकाव्यों में एक आदर्शोन्मुखी जीवन-दृष्टि निरपवाद रूप से रूपायित तो होती है, लेकिन उनकी आदर्श-चेतना एक जैसी हो, यह आवश्यक नहीं। यहाँ तक कि एक ही सांस्कृतिक परम्परा के दो या दो से अधिक महाकाव्यों की आदर्श-चेतना में गहरे भेद के लक्षण देखे जा सकते हैं। इस भेद का कारण महाकाव्यों के प्रस्थान विन्दु का भिन्न-भिन्न होना है। वस्तुतः इसी भिन्नता में महाकाव्यों की निजी विशिष्टता निहित होती है। यह प्रस्थान-भेद तत्तद् महाकाव्यों के कथानक, इतिहास-बोध और रचना-काल से निर्धारित नहीं होता, बल्कि उस आधारभूत मूल्यबोध से निर्धारित होता है जिसे नींव का पत्थर बनाकर महाकाव्यों में मूल्यव्यवस्था का एक प्रासाद, एक वाङ्मय-विग्रह तैयार किया जाता है। महाकाव्यों के नायकों के जीवन-चरित अथवा उनकी भूमिका के द्वारा जिस मूल्य या आदर्श को प्रतिष्ठापित किया जाता है, उसी से प्रस्थान-भेद को पहचानना सम्भव हो पाता है।

I

भारतीय परम्परा में रामायण और महाभारत वाल्मीकि और वेदव्यास रचित दो ऐसे महाकाव्य हैं जिनके माध्यम से दो युगों की आर्ष-संस्कृति अपनी सोलहों कलाओं के साथ वाग्-विग्रहित हुई है। बाणविद्ध क्रौंच-मिथुन के शोक से निःसृत रामायण के चौबीस हजार श्लोक मानो "सप्तभिर्युक्तं तंत्रीलयसमन्वितम्" हैं।[1] महाभारत के विषय में स्वयं वेदव्यास ने

मधुमती

ISSN : 2321-5569
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
वर्ष 60, अंक 10, अक्टूबर, 2020

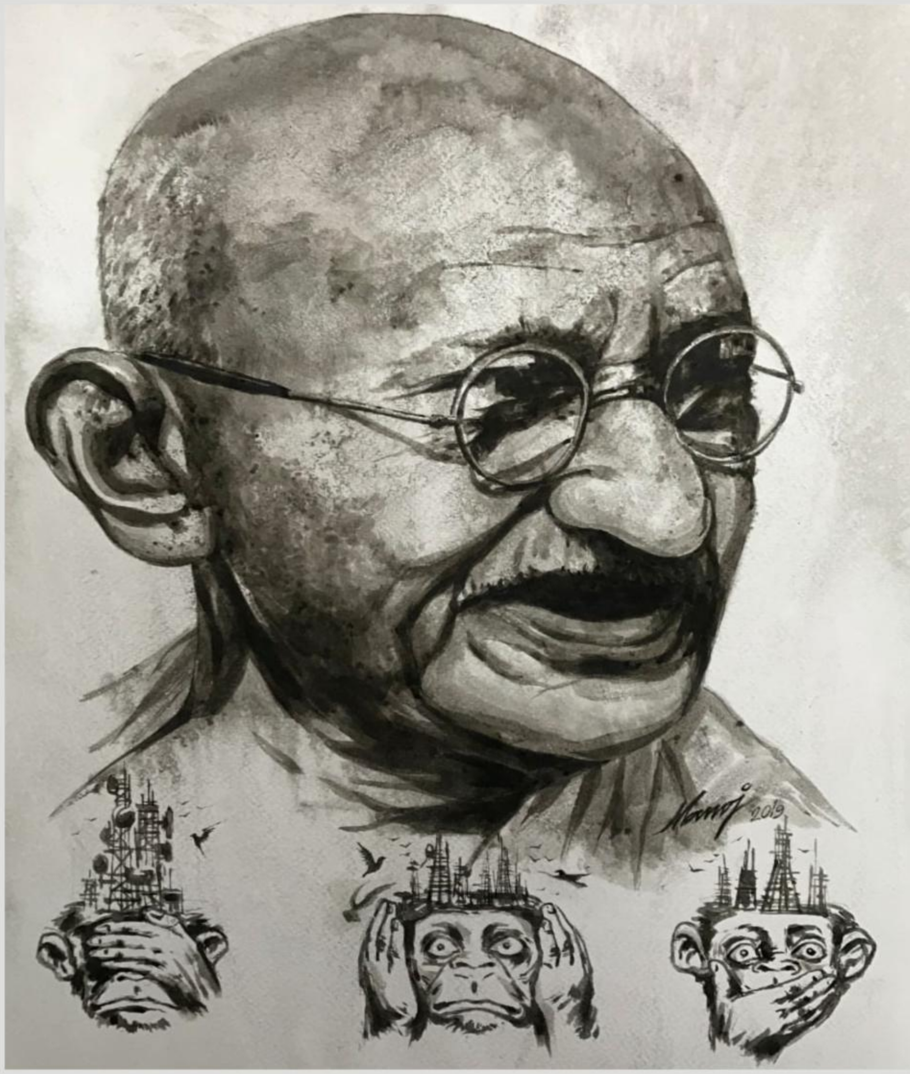

गाँधी आज

मूल्य ₹ बीस

सनातन गाँधी: *महात्मा इन मेकिंग* पर पुनर्विचार

अम्बिकादत्त शर्मा

मैं सिर्फ लोगों के अच्छे गुणों को देखता हूँ, ना की उनकी गलतियों को गिनता हूँ।

– महात्मा गाँधी

अहिंसक सत्यानेषी भारत की थाती *महात्मा गाँधी* को अनेकों नजरिये से देखने–समझने की कोशिश की गई है। उनका जीवन जबकि एक खुली किताब की तरह है। इतनी खुली किताब कि उनके जीवन को पब्लिक और प्रायवेट में विभाजित नहीं किया जा सकता। ऐसे पारदर्शी गाँधी को समझने–परखने का एक बड़ा ही प्रसिद्ध और प्रचलित तरीका *महात्मा इन मेकिंग* का है। इसका मतलब यह है कि उन्होंने उस मुकाम को धीरे–धीरे विकसित करते हुए प्राप्त किया है और तब जाकर दुनिया उन्हें महात्मा गाँधी के रूप में जान पायी। यह गाँधी के महात्मा बनने को एक आनुभविक ज्ञानमीमांसा की पद्धति से समझना है। डार्विन के विकासवाद और आधुनिक मनोविज्ञान की कसौटी पर एक व्यक्ति को समझने की कोई दूसरी पर्यवेक्षणीय ज्ञानमीमांसा हो भी नहीं सकती। परन्तु, एक साधारण व्यक्ति को जिस ज्ञानमीमांसा से समझा जाता है, उसी पद्धति से महात्मा के स्वत्व को भी क्या समझा जा सकता है? आज गाँधी का सम्पूर्ण जीवन दुनिया के सामने पूरी तरह अनावृत्त है। क्या उस जीवन–वृत में विन्यस्त व्यक्तित्व निर्माण की कोई ऐसी अभियांत्रिकी निकाली जा सकती है, जिसका विनियोग कर किसी व्यक्ति को महात्मा गाँधी बनाया जा सके। यदि ऐसा किया जाना सम्भव नहीं, तब *महात्मा इन मेकिंग* के तौर–तरीकों से गाँधी को समझने की यही सबसे बड़ी विफलता है। अत: आईये, *महात्मा इन मेकिंग* की ज्ञानमीमांसा पर पुनर्विचार करते हुए व्यक्तित्वान्तरित गाँधी को समझने का प्रयास करें।

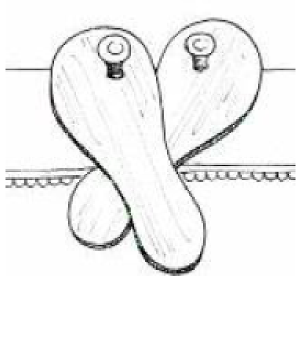

I

यदि हम विकासमान महात्मा गाँधी की इस अवधारणा को स्वीकार कर लेते हैं जो आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से व्यक्ति को समझने का सही तरीका है; तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि उनके विचारों में समय–समय पर बदलाव आया है। उन्होंने अपने दृष्टिकोणों में संशोधन और परिमार्जन किया है।

मधुमती

ISSN : 2321-5569
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
वर्ष 60, अंक 8, अगस्त, 2020

मूल्य ₹ बीस

निर्मल वर्मा का भारतबोध

अम्बिकादत्त शर्मा

बीसवीं शताब्दी के भारतीय साहित्यकारों में *निर्मल वर्मा* का नाम अपने देश और अपने देश से बाहर विदेश में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। साहित्य उनके लिए ज्ञान की एक शाखा मात्र नहीं अपितु ज्ञान की सम्पूर्ण व्यवस्था है। इसीलिए उनकी साहित्य–सर्जना में धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, संस्कृति, सभ्यता और कला इत्यादि सबके सब विमर्श के विषय बनते हैं। मैं यहाँ उनकी साहित्य–सर्जना के उस पक्ष को उजागर करने का प्रयास करूँगा जो अक्सर लोगों की आँखों से ओझल हो जाता है। *निर्मल वर्मा* की विचार–भूमि का यह पक्ष एक दार्शनिक का है जो साहित्य से प्रमुदित हो कर एक सभ्यता–समीक्षक के रूप में आकार ग्रहण करता है। यद्यपि यह समीक्षा भारत के सांस्कृतिक–साभ्यतिक बोध को लेकर है लेकिन भारतीय संस्कृतात्मा का प्रत्यभिज्ञान कराने के लिए उन्होंने यूरोप का पूर्वपक्ष चकित कर देने वाली मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

भारत संस्कृति और सभ्यताओं के बहुध्रुवीय विश्व में एक छोटा–मोटा देश नहीं अपितु आधा ग्लोब है। इसलिए भारत की स्वतंत्रता का मूल्य अन्य उपनिवेशों को मिली राजनीतिक स्वतंत्रता से न केवल भिन्न बल्कि व्यापक और वृहत्तर भी है। अतः भारत के लिए औपनिवेशीकरण से बड़ी समस्या यूरोपीयकरण की है। यदि यह समस्या भारत के लिए है, तो यूरोप के लिए भी एक कठिनाई से कम नहीं।

I

जर्मनी के हैडिलबर्ग विश्वविद्यालय में *अज्ञेय मैमोरियल व्याख्यान* देते हुए उन्होंने *अज्ञेयजी* पर मार्मिक टिप्पणी करते हुए कहा था कि *वे समकालीन भारतीय परिदृश्य में उन विडम्बनाग्रस्त विचारकों में से एक थे जो भारतीयों को घर से बेघर हुए जान पड़ते थे और यूरोपीयों को एक ऐसा भारतीय जिसने अपना घर कभी छोड़ा ही नहीं*– *(भारत और यूरोप, पृ. 40)*। देखा जाए तो यह बात अज्ञेयजी के लिए जितनी सही है उससे अधिक स्वयं *निर्मल वर्मा* के लिए भी सत्य है। अपने वैचारिक जीवन के प्रारम्भिक दिनों में वे समाजवादी यूरोप की विचार–सरणी से प्रभावित प्रतीत होते हैं। इसीलिए उनके चिन्तन को मार्क्सवादी गोत्र का कह कर परम्परावादी उनकी आलोचना किया करते थे। परन्तु चेकोस्लोवाकिया प्रवास के दौरान मार्क्सवाद का *हिंसात्मक सत्य* देखकर उनका हृदय कदाचित् रूपान्तरित हुआ। उनके ही शब्दों में *बाद के वर्षों में अनेक उतार–चढ़ाव आए– कम्यूनिस्ट पार्टी में शामिल होना, हंगरी और* चेकोस्लोवाकिया *की घटनाएँ, स्वयं*

संयुक्तांक

वर्ष 33, अंक 2 जुलाई–दिसम्बर, 2019
वर्ष 34, अंक 1 जनवरी–जून, 2020

उन्मीलन

मानसिक हिन्दस्वराज का वैतालिक दार्शनिक षाण्मासिक

प्रधान–सम्पादक
यशदेव शल्य
मुकुन्द लाठ

सम्पादक
अम्बिकादत्त शर्मा
प्रदीप कुमार खरे

दर्शन प्रतिष्ठान

जयपुर

सौगत प्रामाण्यवाद

अम्बिका दत्त शर्मा

भारतीय दर्शन में प्रामाण्यवाद के प्रश्न पर पहले मीमांसक और बाद में नैयायिकों ने जितनी गम्भीरता से विचार किया है उतनी गहराई से इस प्रकरण पर बौद्ध परम्परा में विचार नहीं हुआ है। इसका एक कारण बौद्ध प्रमाणमीमांसीय चिन्तन पर तत्त्वमीमांसा का वह अधिभार है जिसके चलते उनकी प्रमाणमीमांसा लोकाभिमुख कम और निर्वाणोन्मुखी अधिक रही है। इसका दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि बौद्धों ने इसे व्यवहार को इतना अधिक समर्पित प्रश्न माना कि तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा की अनुरूपता में इसकी व्याख्या करने की उन्हें आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई। बौद्ध परम्परा में तर्कपुंगव दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, धर्मोत्तर, दुर्वेक मिश्र, प्रज्ञाकर गुप्त, मोक्षाकर गुप्त, रत्नाकरशांति, रत्नकीर्ति और ज्ञानश्रीमित्र जैसे एक से बढ़कर एक प्रमाणमीमांसक हुए। इनके प्रभाव में भारतीय प्रमाणमीमांसीय चिन्तन का अभूतपूर्व विकास हुआ है। परन्तु इनके ग्रन्थों में प्रामाण्यवाद की चर्चा प्रसंगप्राप्त रूप से यत्किंचित् ही देखने को मिलती है। जबकि प्रामाण्यवाद को सुगठित रूप में प्रस्तुत करना किसी भी प्रमाणमीमांसा के लिए अपने पुरूषार्थ को प्राप्त करने जैसा होता है। शान्तरक्षित और कमलशील ही केवल इसके अपवाद कहे जा सकते हैं जिन्होंने क्रमशः 'तत्त्वसंग्रह' और 'तत्त्वसंग्रह पंजिका' में प्रामाण्यवाद के सभी विकल्पों पर बौद्ध दृष्टि से विचार किया है।[1] शान्तरक्षित वह पहले व्यक्ति हैं जो बौद्धेतर दर्शनों के प्रामाण्य सम्बन्धी विचारों को पूर्वपक्ष बनाकर उनका भूरिशः खण्डन करते हैं और प्रामाण्यवाद के बौद्धपक्ष को समीक्षित रूप से उद्घाटित भी करते हैं। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि दिङ्नाग से कमलशील पर्यन्त बौद्ध प्रामाण्यवाद के विकास की लम्बी यात्रा में उसका स्वरूप एकरेखीय नहीं रहा है। जबकि मीमांसक और नैयायिक अपने–अपने स्वतः प्रामाण्यवाद और परतः प्रामाण्यवाद की दृढ़ धारणा से कभी विचलित होते

संयुक्तांक : उन्मीलन – वर्ष 33, अंक 2 एवं वर्ष 34, अंक 1, जुलाई 2019–जून 2020
ISSN-0974-0053
U.G.C. Care List : Arts & Humanities, SI.No. 310

ISSN-0975-2560

पारमिता

(वर्ष 10 अंक 10)

दर्शन परिषद् मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़
चरन् वै मधु विन्दति
स्थापना 1994

सम्पादक
डॉ. जय प्रकाश शाक्य

स्थानीय संपादक
डॉ. हरनाम सिंह अलरेजा

2020

दर्शन परिषद

(मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़)

पंजीयन क्रमांक 04/14/01/08825/06

email:mpcgdarshanparishad@gmail.com

पुरूषार्थ चतुष्टय के आलोक में महात्मा गांधी का जीवन और दर्शन

डॉ. सत्यनारायण देवलिया
दर्शन शास्त्र विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर महाविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश।

भारतीय दर्शन में मानवीय जीवन पर विचार करते हुए इसके सर्वांगीण विकास एवं पूर्णता के लिए पुरूषार्थ व्यवस्था के सिंद्धांत को अपनाया गया है। पुरूषार्थ व्यवस्था में उन सभी मूल्यों का समावेश होता है जिन्हे मानव प्राप्त करना चाहता है साथ ही वे मूल्य जिन्हें मनुष्य को प्राप्त करना चाहिए। जैसा कि हम सभी परिचित है मानव की पूर्णता के लिए चार पुरुषार्थ की अवधारणा है जो इस प्रकार है धर्म, नैतिक मूल्य, अर्थः धनसंपदा, इच्छा की भौतिक वस्तु। कामः मानसिक मूल्य सभी तरह की इच्छाएं कामनाऐं। मोक्षः आध्यात्मिक मूल्य। पुरूषार्थ व्यवस्था अपनाने से मानव के जीवन में तो शांति आनंद व पूर्णता तो आती ही है। समाज में भी सामंजस्य, समन्वय, व शांति स्थापित हो सकती है जिसे दर्शन के विद्धांन भली भांति जानते है। यहां हम चारों पुरूषार्थ के आलोक में गांधी जी के जीवन व दर्शन को समझने का प्रयास करेंगे, सही अर्थ में देखा जाए तो महात्मा गांधी ने पुरुषार्थ व्यवस्था की मात्र चर्चा न करके बल्कि व्यावहारिक जीवन मे उतार कर समकालीन समय में इसकी प्रासंगिकता का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया है। धर्म पुरूषार्थ और गांधीजी चारों पुरुषों में धर्म प्रथम पुरूषार्थ है अन्य पुरुषार्थ की नीव धर्म ही है। और नीति के बिना धर्म शून्य है। हम पूजा पद्धति के आधार पर किसी भी धार्मिक मत के अनुयाई हो सकते हैं नैतिक आचरण को व्यवहार में लाना प्रत्येक धर्म की अपेक्षा है। गांधीजी का भी मत है कि दुनिया के बडे धर्मो में जो नीति के नियम बताए गए है अधिकांश में एक ही है और उन धर्म प्रचार को ने यह भी कहा है कि धर्म की वुनियाद नीति है नीव को खोद डालिए तो घर अपने आप ढह जाएगा। वैसे ही नीतिरूपी नीव टूट जाए तो धर्म रूपी इमारत भी दो–चार दिन में ही टूट जाएगी। अतः धर्म और नीति को एक कहने में कोई अड़चन नही है। गांधीजी के अनुसार नीति सत्य और अहिंसा हैं उनके अनुसार अहिंसा से रहित नीति, नीति नही कही जा सकती है। उन्होंने सत्य और अहिंसा को अपने व्यावहारिक जीवन में अतार कर इसका प्रत्यक्ष उदाहरण दिया है और इसे सिद्ध करके भी बतलाया है। साध्य और साधन दोंनो की पवित्रता पर जोर देते हुए कहा कि हमारा साध्य तो शुभ होना ही चाहिए पर उसकी प्राप्ति का साधन भी उतना ही पवित्र होना चाहिए।

हमारे अन्य पुरूषार्थओं का आधार धर्म ही है जो नीति पर टिका है अतः हमें नैतिक रूप से सुंदर होना चाहिए गांधी जी ने समय की मांग के अनुसार इसीलिए एकादश व्रत के पालन की बात कही। अर्थ पुरुषार्थ और गांधीजी, गांधीजी ने धर्म के साथ–साथ अर्थ को भी उतना ही महत्व दिया। जीवन यापन के लिए हमें अर्थ अति अनिवार्य है अनिवार्य हमें अर्थ अति अनिवार्य है अनिवार्य है साध्य और साधन की पवित्रता के सिद्धांत के अनुसार उन्होने अर्थ की पवित्रता पर भी जोर दिया है। हमें अपने श्रम से ही अर्थ का उपार्जन करना चाहिए और इतने ही अर्थ का संग्रह करना चाहिए जो कि हमारे जीवन यापन के लिए आवश्यक है। इसी के परिपालन में उन्होंनं ट्रस्टीशिप का सिद्धांत दिया। पूंजी पतियों को संपत्ति का स्वामी बनकर नही बल्कि उनके संरक्षण बनकर पूंजी का उपयोग करना चाहिए। व आवश्यकता से अधिक संपत्ति जरूरतमंदों की सेवा में लगानी चाहिए। गांधीजी का मत था कि प्रतयेक व्यक्ति उतना ही ले जितना कि उसे आवश्यकता है तो ना कोई भूखा रहेगा और न ही किसी को किसी वस्तु की कमी होगी। अपने आर्थिक विचारों में गांधीजी का मत है कि समस्त आर्थिक क्रियाओं का अंतिम लक्ष्य मानव के हितों की सेवा है। काम पुरूषार्थ और गांधीजी : काम को भी गांधीजी ने भारतीय दर्शनिक विचारधारा के अनुरूप उतना ही महत्व कदया है।

ISSN 0974-8849
www.abdpindia.net

दार्शनिक त्रैमासिक

वर्ष-66
अंक-2
अप्रैल-जून, 2020

अखिल भारतीय दर्शन-परिषद्

वर्ष-66 अंक-2 अप्रैल-जून, 2020

दार्शनिक त्रैमासिक
ISSN : 0974-8849
अभिनिर्देशित (Peer Reviewed)
UGC Care List, Group-I : Recently Added Journals, Sl. No. -4
वर्ष-66, अंक-2, अप्रैल-जून 2020

भीमराव अम्बेडकर : मौलिक धर्म की संकल्पना

डॉ. नरेन्द्र कुमार बौद्ध *

प्राचीनकाल से आज तक धर्म शब्द अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता रहा है, वैसे तो धर्म का तात्पर्य मानव समाज में स्थापित धर्मों से लगाया जाता है। लेकिन अम्बेडकर धर्म शब्द का प्रयोग दार्शनिक चिन्तन की भाँति जिसका परम लक्ष्य मुक्ति प्राप्ति है, के रूप में वे नहीं करते बल्कि मानव की सामाजिक, धार्मिक और मानवीय अस्मिता की स्थापना हेतु धर्म की मूल संकल्पना को प्रस्तुत करते हैं। यह संकल्पना एक विशेष सम्प्रत्यय पर खड़ी है जिसका लक्ष्य व्यक्ति विशेष ना होकर सम्पूर्ण मानव समाज है।

अम्बेडकर धर्म के नाम पर पाखण्ड का विरोध करते हैं। जब यह ईश्वर, आत्मा, प्रार्थना, पूजा, यज्ञ, बलि, अन्धविश्वास, कर्मकाण्ड तथा रहस्य पर आधारित हो जाता है। लेकिन साथ ही इसके परिपालन पर भी बल देते हैं। धर्म वह जो सामाजिक व नैतिक हो, जो बुद्धि को निर्मल, व्यवहार को संयमित व परिमार्जित करता हो और व्यक्ति का चरित्र-निर्माण करता हो। व्यक्ति क्या करता है, क्या नहीं करता, यह उसकी धार्मिक भावनाओं के ऊपर निर्भर है। धर्म मनुष्य में आशा का संचार करता है और उसे कर्म करने की प्रेरणा देता है। लेकिन धर्म तभी सार्थक हो सकता है, जब वह विवेकसंगत, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक हो जो सभी काल में सभी मानव जाति की सेवा करता हो,

* अतिथि व्याख्याता, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

ISSN 0973-3914

Centre for Research Studies
REWA (M.P.)

RESEARCH *Journal Of* SOCIAL AND LIFE SCIENCES

PEER-REVIEWED RESEARCH JOURNAL
UGC JOURNAL NO. (OLD) 40942
IMPACT FACTOR 3.928

Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory
ProQuest, U.S.A. Title Id: 715205

अंक-32 | हिन्दी संस्करण | वर्ष-16 | जून 2020

2020

www.researchjournal.in

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 32nd, Hindi Edition, Year-16, June 2020

अम्बेडकर का धर्म दर्शन विषयक विमर्श

• नरेन्द्र कुमार बौद्ध

सारांश – अम्बेडकर का धर्म से आशय दैवीय शासन या नियमन की आदर्श प्रयोजना के प्रतिपादन से है, जिसका लक्ष्य उस सामाजिक-व्यवस्था जिसमें लोग रहते हैं। आदिम युग में मानव को धर्म की कितनी जरूरत थी, उससे अधिक आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य को धर्म की जरूरत है। इसलिए अम्बेडकर धर्म का दार्शनिक स्वरूप प्रस्तुत करते है ताकि धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझा जा सके। अम्बेडकर के अनुसार किसी भी धर्म के दर्शन को परखने के लिए यही वास्तविक नियम है। एक तो यह नियम लोगों को मनुष्य के आचरण में क्या सही और क्या गलत है, यह परखने एवं दूसरे, नैतिक उत्तमता जिससे सृजित है, उसका स्वरूप वर्तमान धारणाओं के अनुरूप हो। यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि इन दो प्रकार के नियमों में से कौन सा नियम नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ है। उत्तर यह है कि धर्म के दर्शन को परखने के लिये दैवी होने के साथ-साथ प्राकृतिक भी होने चाहिए धर्म के दर्शन का परीक्षण करने के लिए अम्बेडकर इन्हीं नियमों को स्वीकार करते हैं।

मुख्य शब्द – विमर्श, धर्म, मजहब, समाज

अम्बेडकर धर्म और मजहब में फर्क करते हैं। उन्होंने धर्म के नाम पर मजहब या पाखण्ड का विरोध किया। वे मजहब को वैयक्तिक मानते हैं, क्योंकि यह ईश्वर, आत्मा, प्रार्थना, पूजा, यज्ञ, बलि, अन्धविश्वास, कर्मकाण्ड तथा रहस्य पर आधारित है। साथ ही इनके परिपालन पर बल देता है। यह नैतिकता एवं लोकहित को महत्व नहीं देता है। धर्म सामाजिक व नैतिक है, जो बुद्धि को निर्मल, व्यवहार को संयमित व परिमार्जित करता है और व्यक्ति का चरित्र-निर्माण करता है। व्यक्ति क्या करता है, क्या नहीं करता, यह उसकी धार्मिक भावनाओं के ऊपर निर्भर है। धर्म मनुष्य में आशा का संचार करता है और उसे कर्म करने की प्रेरणा देता है। लेकिन अम्बेडकर धर्म को वैज्ञानिक आधार देना चाहते हैं। इसके लिए धर्म तभी सार्थक हो सकता है, जबकि वह विवेकसंगत, सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक हो जो सभी काल में सभी मानव जाति की सेवा करता हो, लोकहित में वृद्धि करता हो। इस प्रकार के धर्म को अम्बेडकर वास्तविक धर्म कहते हैं। इसीलिए वे धर्म को अपनाते हैं और धर्म की आवश्यकता एवं महत्ता को निरूपित करते हैं। अम्बेडकर का धर्म से आशय दैवीय शासन या नियमन की आदर्श प्रयोजना के प्रतिपादन से है, जिसका लक्ष्य उस सामाजिक-व्यवस्था जिसमें लोग रहते हैं। धर्म की विवेचना में दो बातें महत्वपूर्ण होती है। एक तो धर्म की आदर्श प्रयोजना का अध्ययन और दूसरे धर्म की आदर्श प्रयोजना के मूल्याँकन की कसौटी की विवेचना।

एक वर्ग जो विज्ञान के प्रभाव से आकर्षित है, सोचता है कि धर्म समाज के लिए आवश्यक नहीं है, दुनिया को धर्म की आवश्यकता नहीं है। धर्म एक त्रुटि है इसीलिए धर्म-परित्याग आवश्यक है। दूसरा वर्ग जो मार्क्सवादी शिक्षा से प्रभावित होकर धर्म को

• अतिथि व्याख्याता, दर्शनशास्त्र विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

CHETANA
International Journal of Education

Impact Factor
SJIF:5.689

Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613
Online-2455-8729

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 18th July 2020, Revised on 29th July 2020, Accepted 9th August 2020

आलेख

बी.आर. अम्बेडकर : बौद्ध धर्म अंगीकार का अन्तर्द्वन्द्व और राष्ट्रीय भावना

* डॉ. नरेन्द्र कुमार बौद्ध
दर्शन शास्त्रविभाग
डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश
E-mail- n.boudha@gmail.com, मो. 9926535744

मुख्य शब्द – डॉ.कलाम, शैक्षिक चिन्तन, नई शिक्षा नीति, भावी शिक्षक आदि।

सार संक्षेप

विश्व में जाति वर्ण, वर्ग एवं मानवीय असमानता जैसी सामाजिक अमानवीय कुव्यवस्थाओं, कुरीतियों और रूढ़िवादियों के विरुद्ध मानवता के जिन सपूतों ने सतत् संघर्ष किया, उनमें बुद्ध, कबीर, नानक, राजाराम मोहन राय, ज्योतिबा फुले, विवेकानन्द न जाने कितने इस भारत भूमि ने ऐसे सपूतों को जन्म दिया है। ठीक इसी प्रकार भारत में डॉ. अम्बेडकर भी उस वर्ग के मार्गदाता, कष्टनिवारक और मसीहा के रूप में रहे हैं जो असहाय और बिना अपनी मानवीय सामाजिक अस्मिता के अनाथ था।

वैदिक काल में सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियाँ, मान्यताएँ और अवस्थाएँ प्रतिकूल थी। चातुर्यवर्ण–व्यवस्था, जाति–व्यवस्था, अस्पृश्यता, धार्मिक अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, यज्ञ, बलि, लोक–परलोक और काल्पनिक दैवी–शक्तियों की पूजा कुछ अन्यान्य रूढ़िवादी विचार एवं कुरीतियाँ समाज में व्याप्त थी। प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों ने वर्ण और जाति–व्यवस्था के द्वारा समाज के स्वरूप को इतना विकृत कर दिया था, जिसके दुष्परिणाम आज भी भारतीय समाज को भुगतने पड़ रहे हैं। भारतीय समाज में जितनी भी आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक समस्याएँ हैं, उनका सम्बन्ध वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था से है जिनकी वजह से समाज में समता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व और न्याय जैसे मानवीय मूल्यों के मार्ग में सबसे बड़े अवरोध बने जिनसे नैतिक मानवीय लोकतांत्रिक एवं सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो चुका था।

ऐसी स्थिति में एक बहुत बड़ा वर्ग जो इस ह्रास के दुष्परिणामों से पीड़ित था उसे अपनी अस्मिता एवं आश्रय–स्थल के विकल्प की स्वाभाविक तलाशथी। उसे आत्म–अभिव्यक्ति की एक प्रक्रिया और उसके चारों ओर वातावरण की खोज स्वाभाविक थी। सम्प्रदाय–विशेष के लोग यदि अपने ही धर्म के लोगों का शोषण और उपेक्षा करें, तो उससे त्रस्त होकर कोई भी वर्गधर्म–सम्प्रदाय विशेष को त्यागना तो चाहेगा ही।फिर अपने धर्म का परित्याग करके किसी ऐसे अन्य धर्म के चयन करने को उद्यत हो होगा ही, जो उसे समान अधिकार, सुखी तथा सम्मानित जीवन जीने की पूर्ण स्वतंत्रता एवं आश्वासन देता हो।

वर्ण–व्यवस्था का अभिशाप तो हमेशा से दलित वर्ग पर निर्धनता के दंश के रूप में तो कभी धार्मिक एवं सामाजिक कुरीति आदि के रूप में परिलक्षित होते रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप अम्बेडकर ने भी शैशवकाल से ही वर्ग–व्यवस्था की विसंगतियों, विकृतियों

ISSN 0973-3914

RESEARCH *Journal Of* SOCIAL AND LIFE SCIENCES

PEER-REVIEWED RESEARCH JOURNAL
UGC JOURNAL NO. (OLD) 40942
IMPACT FACTOR 3.928

Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory
ProQuest, U.S.A. Title Id: 715205

अंक XXX-XXXI हिन्दी संस्करण वर्ष – 15 दिसम्बर 2019 मार्च 2020

2020

www.researchjournal.in

आई. एस. एस. एन. 0973–3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal
UGC Journal No. (Old) 40942
Impact Factor 3.928
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest, U.S.A. Title Id : 715205

अंक-XXX-XXXI   हिन्दी संस्करण   वर्ष-15   दिसम्बर 2019- मार्च 2020

प्रधान सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजगोपाल

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित
profbrajgopal@gmail.com

ऑनरेरी सम्पादक

डॉ. अखिलेश शुक्ल

प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल

अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

Centre for Research Studies, Bichhiya, Rewa-486001 (M.P.) India Regd. No. 1802

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा की मुख्य शोध पत्रिका
म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत
पंजीयन क्रमांक 1802 (सन् 1997)

12. महिलाओं के विकास में महिला एवं बाल विकास विभाग की प्रमुख योजनाओं के उपलब्धियों का अध्ययन (छत्तीसगढ़ धमतरी जिले के कुरूद ब्लॉक के विशेष संदर्भ में) 87
वेणु साहू, के. पद्मावती

13. समाज में वैधानिक परिवर्तन–डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का दृष्टिकोण 92
विमला सिंह, सुषमा श्रीवास्तव

14. वैकल्पिक न्याय परिदान व्यवस्था के अंतर्गत लोक अदालत की भूमिका: एक विश्लेषात्मक अध्ययन 97
एस.पी. सिंह, सविता मिश्रा

15. मऊगंज विकासखण्ड : भूमि उपयुक्तता वर्गीकरण 105
आलोक कुमार राय
संदीप कुमार पटेल

16. गुप्तकाल संस्कृत साहित्य का स्वर्णयुग : एक ऐतिहासिक विश्लेषण 110
अमोल कुमार

17. युवाओं में नशे की समस्या (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) 116
महेश शुक्ला
मंजुल मयंक त्रिपाठी

18. स्वच्छता अभियान में सामाजिक संगठनों की भूमिका: समाजशास्त्रीय अध्ययन (रीवा शहर के विशेष सन्दर्भ में) 124
अखिलेश शुक्ल
शिवबिहारी कुशवाहा

19. गॉधी जी और उनकी अहिंसात्मक दृष्टि 130
रिचा मिश्रा

20. रीवा जिले में लोक अदालतों की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 134
एस.पी. सिंह
सविता मिश्रा

21. गुप्त युग की वेशभूषा 140
चन्द्रमौलि शुक्ल

22. भारतीय चिंतन परम्परा में कबीर की वैचारिकी 145
नरेन्द्र कुमार बौद्ध

23. अज्ञेय द्वारा लिखित 'गैंग्रीन' कहानी की सम्यक आलोचना 152
मधुकर राठोड़

24. संस्कृतसाहित्ये स्वात्मव्यवस्थायाः विवेचनम् 158
प्राची आर्या

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- XXX-XXXI, Hindi Edition, Year-15, Dec. 2019- March 2020

भारतीय चिंतन परम्परा में कबीर की वैचारिकी

• नरेन्द्र कुमार बौद्ध

सारांश- उनका मूल उद्देश्य एक समानान्तर सामाज का निर्माण, दलित मुक्ति और मानवतावाद है। साधारण, अदना, पत्राधारी ब्राह्मण कबीर का निशाना कभी नहीं था, क्योंकि दमनमूलक सामन्ती वर्ण-व्यवस्था का मुख्य संरक्षक कभी भी अदना गरीब ब्राह्मण नहीं है। तत्त्वज्ञान का दम्भ भरने वाला 'मनुस्मृति' जैसे शास्त्रों से बार-बार उद्धरण देकर विधि-निषेधों का निर्देश करने वाला, वर्णाश्रम एवं मोक्ष की दार्शनिक व्याख्या देने वाला उच्च धार्मिक आसनों पर बैठा सम्पन्न ब्राह्मण है। दलित का शत्रु गरीब अदना ब्राह्मण कभी नहीं है। धार्मिक सत्ता का फायदा उठानेवाला चतुर ब्राह्मण है। कबीर का विरोध सिर्फ उन ब्राह्मणों से है, जो मिथ्या-चेतनाओं के बल पर जनता को सुलाकर रखना चाहते हैं। कबीर के विद्रोह की खूबी यह है कि यह इकहरा नहीं है। वे ब्राह्मणों के साथ उसी उग्रता से मुल्लाओं की आलोचना भी करते हैं। वे बड़े साहस से ऐसा करते हैं। कबीर की दलित चेतना को भक्ति ने साहस से भर दिया था, तभी वे बोले-'हम न मरैं मरिहैं संसारा, हम कूँ मिल्या जियावन हारा।' यदि भगवान मर जाएँगे, तब जरूर हम भी मर जाएँगे। भगवान ही नहीं मरेंगे तो हम क्यों मरेंगे। कबीर आगे मन के पूरे जोर से कहते हैं, 'शाक्त मरेंगे, सन्त नहीं, क्योंकि हम राम का रसायन पीते हैं।'

मुख्य शब्द– दलित, आत्म पहचान, पृथकवाद, परजीवी, संस्कृति।

कबीर में दलित आत्मपहचान की अवधारणा एक खास तरह की वैयक्तिकता के मानवीय अहसास की ओर भी ले जाती थी, लेकिन वहाँ कोई पृथकतावाद न था। आत्मपहचान की पश्चिमी अवधारणा पृथकता के बोध पर जोर देती है, जबकि कबीर की आत्मपहचान का सम्बन्ध अपृथकता से है। जिय भारतीय समाज में भेद के सैकड़ों स्तर-उपस्तर हों, वही अपृथकता की सही आत्मपहचान है।

कबीर की भक्ति वैयक्तिक, मिश्रण शील और सहज थी। लेकिन ध्यान में रखना होगा कि वह मुख्यतः यह सामाजिक अनुभव देती है कि हम सभी एक समग्र के अंश हैं, इस प्रकार अन्तःसम्पर्कित और परस्पर एक-दूसरे से प्रभावित हैं।

वे जितना ज्ञान पर जोर देते हैं, उतना ही प्रेम और श्रम पर भी। वे संन्यास और वैराग्य को लताड़ते हैं और श्रम पर जोर देते हैं।

कबीर दलित आत्मपहचान के संघर्ष को एक तरफ 'जाति न पूछौ साधु की' कहकर जाति-प्रथा-विरोध से जोड़ते हैं, दूसरी तरफ, जब वर्ग की अवधारणा का ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं था, 'सूरा सो पहचानिए जो लरै दीन के हेत' कहकर जाति को

• अतिथि व्याख्याता, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

Books

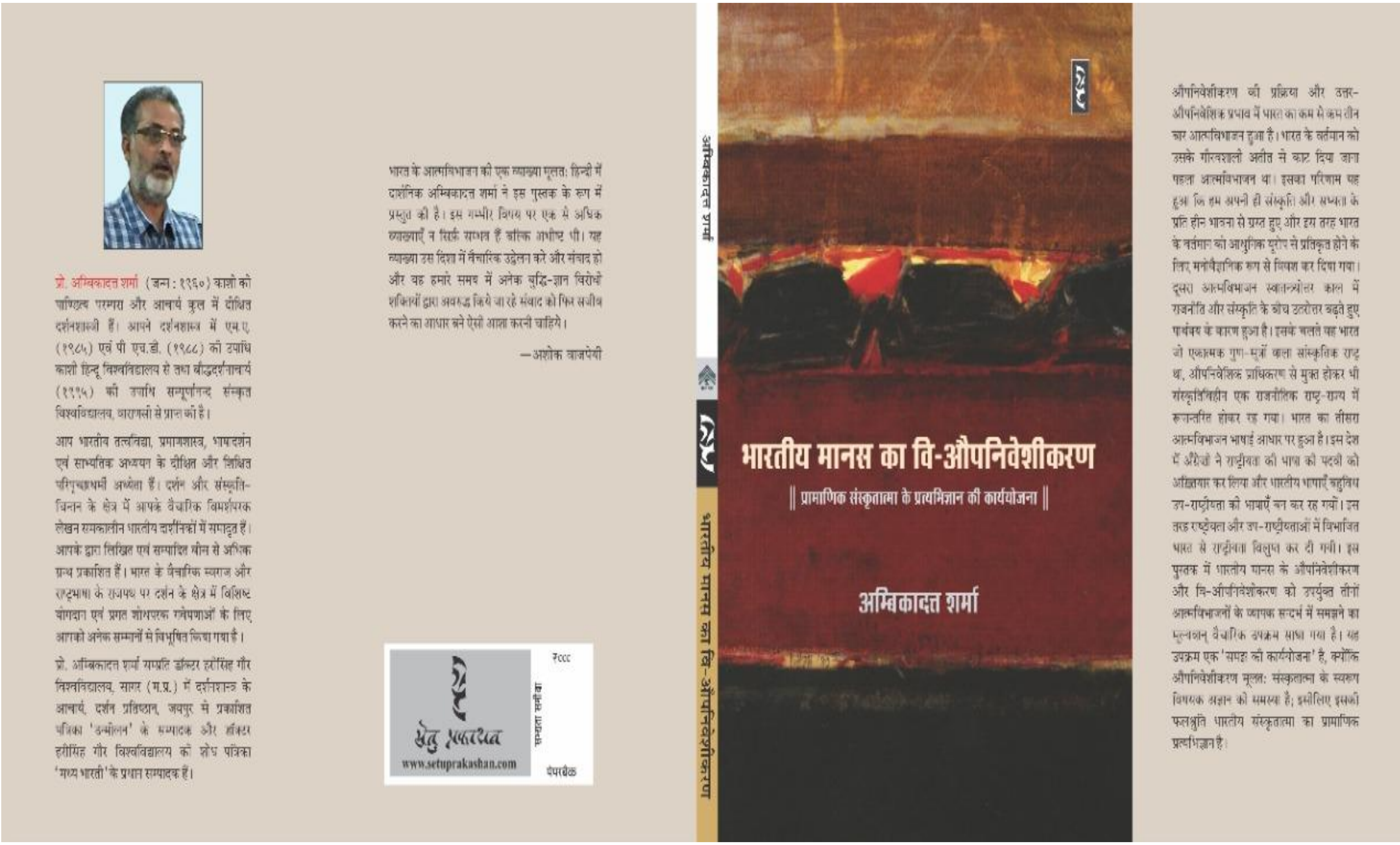

Name of the Author - **Ambika Datta Sharma**
Title of the book - भारतीय मानस का वि–औपनिवेशीकरण
Year of publication - **2020**
ISBN - **978-93-89830-44-6**
Name of the publisher - सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली,

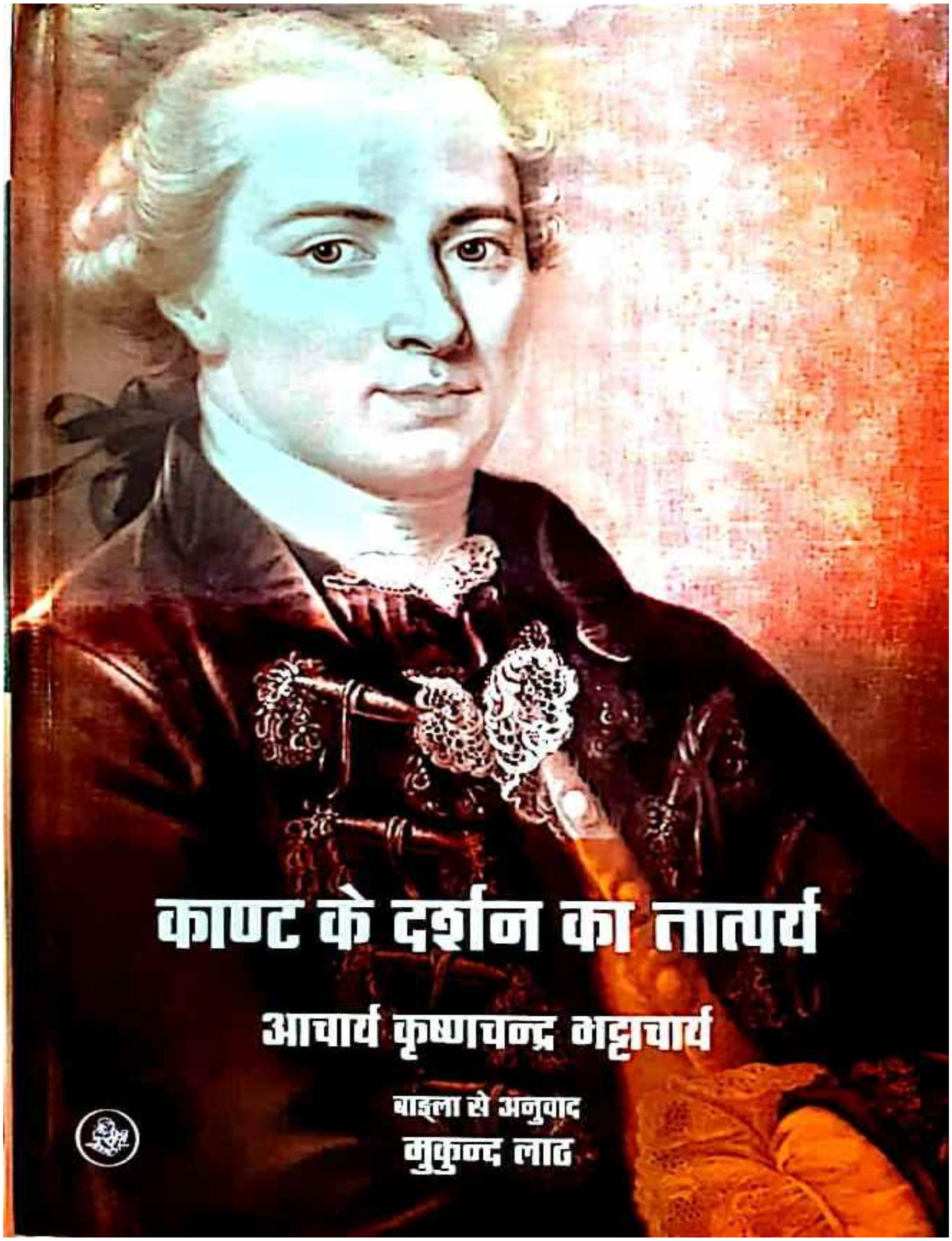

Name of the Editor	-	Ambika Datta Sharma
Title of the book	-	काण्ट के दर्शन का तात्पर्य
Year of publication	-	2020
ISBN	-	978-93-89577-64-8.
Name of the publisher	-	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,